

Vol.10 October'16 No.3  
Annual Subscription : Rs 100  
Rs. 10/- per copy

# ब्रह्मार्पण **BRAHMARPAN**

वेदोऽखिलो  
धर्ममूलम्

A Monthly publication of  
Brahmasha India Vedic  
Research Foundation



**Brahmasha India Vedic Research Foundation**

ब्रह्मशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

## हम एक हैं

-डॉ. रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'

हम एक थे हम एक हैं हम एक रहेंगे  
जय हिन्द साथ-साथ सभी मिलके कहेंगे।  
यह एकता अनादि है अनंत रहेगी  
इस पर न कूटनीति किसी की भी चलेगी॥

यह संत फकीरों की पुण्य भूमि रही है  
सद्भाव की गंगा यहाँ निर्बाध बही है।  
हम भेदभाव काल सर्प को न सहेंगे  
समवेत वन्देमातरम् सदैव कहेंगे॥

सारे जहाँ से अच्छा यह फूलों का चमन है  
समभाव का सुगन्ध यहाँ बहता-पवन है।  
यहाँ न भेदभाव शूल का सवाल है,

हर फन में यहाँ हर कोई बेहद खुशहाल है॥  
हम इस सुगन्ध के अभाव को न सहेंगे  
जय हिन्द साथ-साथ सभी मिल के कहेंगे।  
हमने तो सबको ब्रह्म का स्वरूप कहा है  
“वसुधैव कुटुम्बकम्” हमारा मंत्र रहा है

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

भावार्थ-भोजन करना, नींद लेना, भयभीत होना तथा सन्तान पैदा करना, ये सब क्रियाएँ तो मनुष्यों में पशुओं के समान पायी जाती हैं। मनुष्यों में धर्माचरण ही एक ऐसा कार्य है जो उनको पशुओं से अलग करता है। अतः जो मनुष्य शरीर धारण करके धर्माचरण नहीं करता, वह तो पशु-समान ही होता है।



**BRAHMASHA INDIA VEDIC  
RESEARCH FOUNDATION**

C2A/58, Janakpuri,  
New Delhi-110058

Tel :- 25525128, 9313749812

email: deekhal@yahoo.co.uk

brahmasha@gmail.com

Website : www.thearyasamaj.org

of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul

Secretary

Dr. B.B. Vidyalkar 0124-4948597

President

Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)

V.President

Dr. Mahendra Gupta V.President

Ms. Deepti Malhotra

Treasurer

**Editorial Board**

Dr. Bharat Bhushan Vidyalkar,

Editor

Dr. Harish Chandra

Dr. Mahendra Gupta

Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के  
लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं  
हैं। किसी भी विवाद की  
परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली  
ही होगा।

**Printed & Published by**

B.D. Ukhul for Brahmasha India

Vedic Research Foundation

Under D.C.P.

License No. F2 (B-39) Press/

2007

R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062

Price : Rs. 10.00 per copy

Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan October' 16 Vol. 10 No.3

आश्विन-कार्तिक 2073 वि.संवत्

**ब्रह्मार्पण  
BRAHMAPAN**

A bilingual Publication of Brahmasha  
India Vedic Research Foundation

**CONTENTS**

1. हम एक हैं 2  
-डॉ. रामदेव सिंह 'देव'
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7  
-डॉ. भारत भूषण
4. कर्म-भेद और कर्म-फल 8  
-स्व. महा. आनन्दस्वामी
5. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 13  
पर कुठाराघात  
-देवेन्द्र विद्यालंकार
6. भारत को चर्च क्या हानि  
पहुँचा रहे हैं? 17  
-मे. जन. विश्वास सदाशिव जोगलेकर
7. वीरांगना दुर्गावती 23
8. कोर्ट ने पूछा समान नागरिक  
संहिता क्यों नहीं? 25
9. पहले मन को निर्मल करो 27  
-आनन्द स्वामी
10. मनुस्मृति पर आक्षेप 28  
-डॉ. भवानीलाल भारतीय
11. Dayananda-As A Scholar 33

## संपादकीय

### रियो ऑलम्पिक में भारत का प्रदर्शन इतना निराशाजनक क्यों ?

रियो ऑलम्पिक का महाकुंभ समाप्त हो गया। इसमें विश्व के 206 देशों के 10500 प्रतिभागियों ने 2488 मेडल जीतने के लिए विभिन्न स्पर्धाओं में भाग लिया। इसमें भारत की ओर से 119 प्रतिभागी सम्मिलित हुए। राजधानी रियो में 28वें ऑलम्पिक खेलों की शानदार मेजबानी करके ब्राजील ने दिखा दिया कि विकासशील देश भी ऐसे आयोजन अच्छी तरह कर सकते हैं। वहाँ किसी को भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि ब्राजील कड़े आर्थिक संकट से गुजर रहा है। भारत इसमें अब-तक का सबसे बड़ा दल लेकर इस आशा से गया था कि इस बार पिछले ऑलम्पिक से कुछ अधिक मेडल लेकर आएगा। परन्तु लम्बे-चौड़े दावों के बीच उम्मीद बँधाने के नाम पर पी. वी. सिन्धु के सिल्वर और साक्षी मलिक के ब्रॉज मेडल ही प्राप्त हुए। देश के खेल प्रेमी मेडल जीतने की आशा में पहले दिन से दूरदर्शन पर नज़र जमाए बैठे रहे ; पर निराशा ही हाथ लगी। भारतीय दल ने 15 खेलों की 62 स्पर्धाओं में भाग लिया और दो खेलों में वह अशंतः सफल रहा। गत छह ऑलंपिक में हमने एक से छह के बीच मेडल जीते। हम कभी 10 मेडल नहीं जीत सके। रियो के मेडलों की सूची में भारत का 67वाँ स्थान रहा।

सामान्यतः 2008 से पूर्व खिलाड़ियों का लक्ष्य ऑलंपिक के लिए क्वालिफाई करना होता था। परन्तु पेइचिंग में । गोल्ड

और 2 ब्रॉज जीतने से खिलाड़ियों में आत्मविश्वास पैदा हुआ कि हम भी 'महाकुंभ' में मेडल जीत सकते हैं। इसके बाद लंदन में छह मेडल हाथ आए। रियो में सबसे बड़ा दल तो गया लेकिन केवल दो मेडल हाथ आए।

**भावी ऑलम्पिक में अच्छे प्रदर्शन के लिए नई रणनीति की आवश्यकता:**

1. देश में हमें खेल संस्कृति विकसित करनी होगी। अभी तक हमारे यहाँ कहा जाता है कि "खेलोगे, कूदोगे होगे खराब, इसलिए माँ-बाप बच्चों को खेलने से निरुत्साहित करते हैं। अब जरूर इसमें बदलाव आ रहा है।
2. गाँव और शहरों में खेल की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना होगा।
3. खेल प्रतिभाओं की खोज बचपन से करनी होगी।
4. स्कूल और कॉलेजों में खेलों को अनिवार्य विषय बना कर खेलों को प्रोत्साहन देना होगा।
5. खेलों की सुविधाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रदान की जाएँ।
6. बजट में खेलों के लिए पर्याप्त धनराशि सुरक्षित रखी जाए।
7. अन्य देशों के समान भारत में भी खेलों का नियंत्रण और संवर्धन निजी संस्थाओं के हाथों में होना चाहिए। सरकार को इन्हें पर्याप्त इन्फ्रास्ट्रक्चर और फंड्स प्रदान करने चाहिए।

**रियो ऑलम्पिक की कुछ विशेष बातें:-**

रियो ऑलम्पिक में कुछ ऐसे भी खेल-सितारे उतरे जिन्होंने अपनी पुरानी पहचान को नए आयाम दिए- इनमें से एक

हैं अमरीकी तैराक माइकल फेलप्स। इन्होंने लंडन ऑलम्पिक्स में 22वाँ मेडल जीत कर खेलों को अलविदा कह दिया था। लेकिन वे अपना फैसला बदलकर फिर पूल में उतरे और 3 गोल्ड और दो सिल्वर और दो ब्रॉज मेडल जीत कर अपनी मेडल संख्या 28 (23 गोल्ड, 3 सिल्वर और 2 ब्रांज) तक पहुँचा दी। दूसरे जमैका के रनर उसेन बोल्ट ने रियो ऑलम्पिक से पहले ही गोल्डन ट्रिपल लंडन ऑलम्पिक में 100 मी. 200 मी. और 4×100 मी. रिले में गोल्ड मेडल जीतने के बाद रियो में भी इस प्रदर्शन को जारी रखा। भारत के कुछ खिलाड़ियों ने रियो में कोई मेडल तो नहीं जीता लेकिन उन्होंने अपनी हिम्मत और जज्बे से लोगों के दिलों में जगह बनाई। इनमें दीपा कर्माकर जिमनास्ट पहली क्वालिफाई करने वाली महिला एथलीट थीं जो स्विट्जरलैंड की ब्रॉज मेडलिस्ट से मात्र 1 अंक से पिछड़ कर ब्रॉज से चूक गईं। ऑलम्पिक में भारत के एकमात्र गोल्ड मेडल जीतने वाले अभिनव बिन्द्रा पुरुषों की 10 मीटर एयर राइफल स्पर्धा में 163.8 की बराबरी के बाद शूट आउट में मात्र 0.5 पाइंट से ब्रॉज से चूक गए। इसके अतिरिक्त बेडमिंटन में पुरुष एकल में श्रीकान्त ने भी अच्छा प्रदर्शन किया और वे ब्रॉज से चूक गए। कुछ अन्य खिलाड़ियों का प्रदर्शन भी अच्छा रहा। हमें टोक्यो ऑलम्पिक के लिए अभी से प्रतिभाओं की खोज कर अच्छे कोचों की सहायता से सभी खेलों के लिए तैयारी शुरू कर देनी चाहिए ताकि रियो जैसी निराशा हाथ न लगे। विशेषतः टीम खेलों के लिए युवा खिलाड़ियों का अभी से चयन कर लेना चाहिए।

संपादक

## सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-105)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

पूर्व सूत्र में कथित अर्थ की सिद्धि के लिए निम्नलिखित सूत्र में सूत्रकार एक हेतु प्रस्तुत करता है, सूत्र है:-

**संहतपरार्थत्वात् ॥105॥**

अर्थ-(संहत् परार्थत्वात्) संघात (पदार्थ) परार्थ (दूसरों के लिए) भावार्थ-जीवात्मा के लिए भोग और अपवर्ग की सिद्धि के संदर्भ में 31वें सूत्र में जीवात्म-चेतन की सिद्धि के लिए इस हेतु का प्रथम उल्लेख किया गया है। यहाँ पर भी इसका कथन जीवात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए हुआ है। इस प्रसंग में चेतनमात्र के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए आगे हेत्वन्तरों का निर्देश हैं। उस में उक्त हेतु का संग्रह कर लिया गया है। 'संहत' यानि विभिन्न पदार्थों के रूप में विद्यमान सारे अचेतन (जड़) तत्त्व पदार्थ (अन्यों के लिए) दिखाई देते हैं। उनकी समस्त प्रवृत्ति दूसरों के लिए होती है। इसमें भिन्न वह पर है- इसका भोक्ता 'जीवात्मा'। यदि भोक्ता आत्मा का अस्तित्व न माना जाए तो जगत् की प्रवृत्ति व्यर्थ है। इस प्रकार भोग्य अचेतन से भिन्न भोक्ता चेतन आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

दी हिबिस्कस,

बिल्डिंग-5, एपार्ट नं.-9बी

सेक्टर-50, गुड़गाँव (हरियाणा) 122009

फोन-0124-4948597

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने।

देहश्चितायां परलोकमार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

भावार्थ-मनुष्य जब मरता है तब सारी धन-संपत्ति पृथ्वी पर ही पड़ी रह जाती है, पशु बाड़े में खड़े रहते हैं, जीवन-साथी (पत्नी या पति) घर के दरवाजे तक साथ देता है, मित्रबन्धु-सम्बन्धी श्मशान तक साथ चलते हैं और यह शरीर चिता पर जलकर भस्म हो जाता है। यदि जीवात्मा के साथ परलोक में कोई चलता है तो वह कर्म ही है जो उसने जीवित रहते हुए अच्छा-बुरा किया है और कोई साथ नहीं चलता।

## कर्म-भेद और कर्म-फल

-स्व. महा. आनन्दस्वामी जी महाराज

सर्वप्रथम हम संचित कर्मों को लें। संचित कर्म वे हैं जिनसे मनुष्य को उसका शरीर, बुद्धि, परिवार और जाति मिलते हैं। जितने सात्त्विक कर्म होंगे उतनी ही उत्तम ये सब वस्तुएँ प्राप्त होंगी। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में 'मुनस्मृति' के आधार पर इस बात को पूरे विस्तार के साथ कहा है। उन्होंने बताया कि सात्त्विक कर्म करने से कौन-कौन से शरीर मिलते हैं, राजसिक कर्म करने से कौन-कौन से शरीर मिलते हैं और तामसिक कर्म करने से क्या-क्या होता है और 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में निरुक्त के दो सुन्दर श्लोकों का प्रमाण भी दिया है जिनमें कहा है-

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।

नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥

आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः॥

मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥

अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।

कितना विशाल है आत्मा का जीवन! कितना लम्बा, कितना अनादि और अनन्त! ओ मृत्यु से डरने वालो! निरुक्त के इन शब्दों को देखो कि मृत्यु के सम्बन्ध में तुम्हारा भय कितना निरर्थक है। मृत्यु के पश्चात् जीवन, जीवन के पश्चात् मृत्यु। डरने की कहीं कोई बात नहीं। भय की बात है तो जन्म और मृत्यु का यह चक्र। जब तक यह चक्र चलता रहेगा, तब तक दुःख से छुटकारा नहीं मिलेगा। इसीलिए निरुक्त के इस श्लोक में ज्ञान रखने वाले भक्त ने पुकारकर कहा-

“बहुत बार मैं मरा हूँ। मर कर फिर उत्पन्न हुआ हूँ। जन्म लेकर मरा हूँ। सहस्रों-लाखों शरीर मैंने देखे हैं। सहस्रों-लाखों योनियों में मैं गया हूँ। कितने ही प्रकार के भोजन मैंने खाए हैं। कितने ही स्तनों का दूध पिया है। कितनी ही मातायें

मैंने देखी हैं, कितने ही पिता, कितने ही मित्र, कितने ही सम्बन्धी। कितनी ही बार उल्टा होकर लटका हूँ। कितने ही संकटों को मैंने सहा है, परन्तु इन संकटों और आपत्तियों का अन्त ईश्वर से मिले बिना कैसे होगा? कभी हुआ नहीं, होगा भी नहीं।”

यह है बार-बार शरीर धारण करनेवाली आत्मा की पुकार। परन्तु जब तक ऐसे कर्म विद्यमान हैं जिनसे शरीर मिले, तब तक जन्म का होना अवश्यम्भावी है। इन पहले संचित किये हुए कर्मों के अनुसार ही शरीर मिलता है, परिवार मिलता है, बुद्धि मिलती है, कई अन्य वस्तुएँ मिलती हैं।

कर्म के इस सिद्धान्त को जो लोग नहीं मानते, वे प्रायः कहते हैं कि सब-कुछ स्वयं ही हो जाता है। परन्तु कैसे हो जाता है मेरे भाई! एक बालक जन्म से अन्धा उत्पन्न हुआ। आप कहते हैं यह बात उसके माता-पिता की भूल से हुई परन्तु यह भी सोचो कि इस बालक के समय माता-पिता से भूल क्यों हुई? प्रत्येक बात के पीछे मनुष्य का अपना कर्म कर रहा है।

एक व्यक्ति का बहुत प्यारा बच्चा था। एक सर्प ने उसे डस लिया। बच्चा मर गया। पिता दुःख से व्याकुल हो उठा। एक सपेरा बुलाया गया। उसने आकर साँप को पकड़ लिया। पिता के सामने सर्प को कह के वह बोला, “इसने तुम्हारे बच्चे को मार डाला है, तुम इसे मार डालो।” पिता ने सर्प की ओर देखते हुए कहा, “इसे मारने से क्या मेरा बच्चा जी उठेगा?” सपेरे ने कहा, “बच्चा तो अब जी नहीं सकता।” पिता ने कहा, “तो मैं इसे मारकर क्या करूँगा, तुम ही इसे ले जाओ, जो हो वह करो।”

सपेरा सर्प को लेकर वन में चला गया। उसे सामने रखकर पत्थर से उसका सिर कुचलने लगा। तो साँप ने कहा, “ठहरो!” सपेरे ने आश्चर्य से कहा, “क्यों” सर्प बोला, “मुझे क्यों मारते हो?” सपेरे ने कहा, “तुमने एक बच्चे को

डसकर मार दिया है।" सर्प बोला, "मैंने उसको नहीं मारा। उसकी मृत्यु आ गई थी, उसने मुझसे कहा, इसे डस लो।" सपेरे ने मृत्यु की खोज की और अन्त में उसके पास पहुँच गया; बोला, "मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। तुमने उस बच्चे को मारने की आज्ञा क्यों दी?" मृत्यु ने मुस्कराकर कहा, "इसीलिए दी कि ऐसा करने का समय आ गया था।" सपेरे ने समय को ढूँढा ; बोला, "तुम्हें दण्ड दूँगा।" समय ने कहा, "तुम समझ नहीं सकते। इसके कर्मों का फल यही था। कर्म के फल को कोई रोक नहीं सकता।" सपेरे ने कर्म को जा पकड़ा; बोला, "तुमने यह बुरा कार्य क्यों किया?" कर्म ने कहा, "मुझसे क्यों पूछते हो, मरने वाले से पूछो। मैं तो जड़ हूँ, करनेवाला वह है।" सपेरा बच्चे की आत्मा के पास पहुँचा। उसने धीमे से कहा, "ये सब लोग ठीक कहते हैं। मैंने ही यह कर्म किया था जिसका यह परिणाम हुआ।"

सो भाई मेरे! इस वहम में न रहो कि कोई भी बात स्वयमेव हो जाती है। जो कुछ होता है, उसके पीछे भोगनेवाले का कर्म कार्य करता है।

कई दिन हो गए आपको मानव-जीवन का वृत्तांत सुनते हुए। इस यात्रा के सम्बन्ध में सोचने की सबसे बड़ी बात वही है जो मेरे महेश ने कही कि 'देर न हो जाए।' शीघ्रता से सब-कुछ व्यतीत होता जाता है। समय बीतता जाता है लक्ष्य की ओर बढ़ो नहीं तो देर होगी। अवश्य। कैसे यह देर न हो, मनुष्य क्या करे कि लक्ष्य के पास पहुँच जाए, यही कह रहा था।

मनुष्य के जीवन में सबसे पहली आवश्यक वस्तु है उसका शरीर। यह न हो तो फिर मनुष्य ही न रहेगा। इसलिए मैंने सबसे पूर्व शरीर के सम्बन्ध में आपको बताया कि उसे कैसे ठीक रखा जाए। शरीर को ठीक रखने का साधन बताते हुए मैंने कहा कि मन को प्रसन्न रखने के साधन बताते हुए पहले यह बताया कि दूसरों के गुण देखो, उनके दोष न

देखते रहो। शहद की मक्खी बनो, मिठास और सुगन्ध एकत्रित करो। गन्दगी की मक्खी बनकर फोड़े-फुन्सियों और घृणा उत्पन्न करनेवाले ढेरों पर न बैठते फिरो।

फिर दूसरा साधन यह बताया कि कर्मशील बनो। कर्म करते जाओ। परिश्रम करो, पसीना बहाओ, आलसी बनकर न बैठ जाओ। कर्म तीन प्रकार के हैं, वे हैं कर्म, अकर्म और सुकर्म और ये नित्य कर्म, निमित्तिक कर्म और काम्य कर्म। मैंने बताया था कि ये ही कर्म तीन प्रकार के हैं- 'संचित', 'प्रारब्ध' जिनसे भाग्य बनता है और 'क्रियमाण' जिन्हें हम इस जीवन में करते हैं।

कर्म के इस सिद्धान्त को समझना बहुत सरल नहीं। कर्म को करनेवाला आत्मा है। मानव-शरीर में आकर जैसा भी कर्म वह कर सकता है, कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु उसका फल देता है ईश्वर जिसका ज्ञान अनन्त है, शक्ति अनन्त है। आत्मा के कल्याण के लिए कौन-से कर्म का क्या फल वह देगा, इसका निर्णय अनन्त है इसलिए किये हुए कर्म का फल कब और कैसे मिलेगा, इसका मनुष्य को पता नहीं लग पाता। परन्तु पता लगे या न लगे, एक बात बिल्कुल निश्चित है कि कर्म का फल मिलता है अवश्य। कोई भी कर्म, अच्छा या बुरा, फल दिये बिना कभी रहता नहीं। ऐसे कर्म के उस भाग का वर्णन चल रहा है जिसे 'संचित' या इकट्ठे किए हुए कर्म कहते हैं। था पिछले जन्मों के किए हुए कर्म कहते हैं। पिछले जन्मों के किये हुए इन कर्मों के कारण आत्मा को उसका शरीर, परिवार, बुद्धि, देश और जाति मिलते हैं। इन 'संचित' कर्मों के अतिरिक्त 'प्रारब्ध' कर्म उन कर्मों को कहते हैं जो भाग्य बनकर हमारे आज के कर्मों पर प्रभाव डालते हैं। किस प्रकार होती है यह बात इसे धन और व्यापार के एक उदाहरण के रूप में सुनिये।

धन का उदाहरण इसलिए दे रहा हूँ कि आजकल धन ही

सब-कुछ हुआ जाता है; वास्तव में है नहीं, परन्तु समझ लिया गया है। प्रत्येक बात रुपये-पैसे में होने लगी है। यदि किसी व्यक्ति का लड़का बीमार हो, उससे पूछिये 'क्या हाल है?' तो वह कहेगा, 'श्रीमान्! रुपये में चार आने लाभ है या पाँच आने लाभ है।' कम्बख्त बीमारी भी रुपये-पैसों में गिनी जाती है। रुपये-पैसे ही सब-कुछ हो गये हैं तो फिर क्या करूँ! रुपये का उदाहरण ही सुनिये। शायद शीघ्र समझ में आ जाए।

मान लो एक व्यक्ति के पास सौ रुपये हैं। इस रुपये को लेकर वह पहाड़ पर जाता है। वहाँ से आलू क्रय करता है, उन्हें नगर में ले-जाकर बेच देगा, कुछ लाभ उठा लेगा। आलू का क्रय करने के पश्चात् वह नगर में आता है तो पता लगता है कि कुछ आलुओं के सड़ जाने से तथा भाव कम होने से उसे उतना लाभ नहीं हो सकता जितनी उसे आशा थी। उसने सोचा था कि उसे सौ रुपये के बदले डेढ़ सौ रुपये मिल जायेंगे परन्तु मिले केवल एक सौ दस तो इसका अर्थ यह है कि उसके प्रारब्ध कर्म में केवल दस ही रुपए फल बनकर इकट्ठे हुए थे। यदि एक सौ दस भी नहीं मिले अपितु दस या पचास रुपए का घाटा पड़ गया तो यह घाटा भी प्रारब्ध कर्म का कारण है।

इस प्रारब्ध कर्म के कारण हम कई बार देखते हैं कि अच्छा और शुभ कर्म करनेवाले दुःखी हैं तथा बुरे और पाप कर्म करनेवाले सुखी हैं। यह दुःख और सुख प्रारब्ध कर्मों के कारण होता है, वर्तमान कर्मों के कारण नहीं। प्रारब्ध कर्मों के कारण कई बार मनुष्य इस जीवन में भी ऐसे कर्म करता है कि उसे एक कोष मिलना चाहिए। वह ऐसा कार्य करता है कि कोष के पास पहुँच जाये। जान-बूझकर नहीं अपितु अनजाने करता है यह प्रारब्ध कर्म है। उसे चोट लगनी चाहिए तो ऐसी जगह पहुँच जाता है जहाँ से नीचे गिर पड़े। जान बूझकर वह गिरने के लिए नहीं जाता परन्तु प्रारब्ध कर्म उसे ले जाता है।

## अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुठाराघात

-देवेन्द्र विद्यालंकार

एक बार फिर इस्लाम का असली चेहरा सामने आया जब इस्लाम के कुछ ठेकेदारों ने इस्लाम के नाम पर चित्रकार, लेखिका एवं आयुर्विज्ञानी डॉ. तसलीमा नसरीन पर प्राणघातक हमला कर जान से मारने की धमकी दी एवम् शहर में पुनः आने पर सरकलम का आदेश भी। इससे पहले भी मूल देश बांग्लादेश में अनेक बार उनके घर पर हमला हुआ एवम् उन्हें जान से मारने एवम् सरकलम करने तक की धमकी दी गई। इसी कारण उन्हें अपना देश छोड़कर निर्वासित जीवन व्यतीत करने के लिए यूरोपीय देशों में जाना पड़ा लेकिन कठमुल्लाओं के विश्वव्यापी साम्राज्य के कारण उन्हें वहाँ से भी पलायन कर अंततः लोकतांत्रिक मूल्यों में आस्था के कारण भारत को ही सुरक्षात्मक दृष्टि से उचित समझ कर यहाँ पर ही निर्वासित जीवन व्यतीत करने के लिए गृहमंत्रालय में आवेदन करना पड़ा। मंत्रालय ने भी उन्हें अंततः वोटबैंक के भय से अस्थाई निवास हेतु ही अनुमति प्रदान की। लेकिन अपने आपको लोकतंत्र का सबसे बड़ा आदर्श कहलाने वाले एवं धर्मनिरपेक्ष का झण्डा उठाने वाले देश में भी उन्हें प्राणरक्षा की भीख माँगनी पड़ी।

तसलीमा नसरीन कोई प्रथम उदाहरण नहीं है अपितु इनसे पहले भी डॉ. सलमान रुश्दी को वैसा ही कुछ झेलना पड़ा जब उन्होंने अपने विवेक से 'शैतानों की आयतों' का सृजन किया।

अपना देश छोड़कर उन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं वह इसलिए नहीं कि उन्होंने कोई व्यभिचार किया है या किसी खूनी केस में नाम दर्ज है या कि अरबों-खरबों का कोई भूमि घोटाला किया है या अपने देश के साथ विश्वासघात किया है या अरबों-खरबों रुपये गबन किये हैं अथवा वह कोई नरभक्षी है या किसी और जघन्य अपराध में सम्मिलित हैं। अपितु उनका केवल एकमात्र

अपराध इतना है कि उन्होंने अपनी बुद्धि, विवेक, ज्ञान एवं चिंतन के कारण समाज में व्याप्त कुरीति, धर्मान्धता एवं अवैज्ञानिक समझ का कड़ा विरोध अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा किया जिससे दो पैरों वाले राक्षसों के अंदर विद्यमान कठमुल्लापन जाग उठा एवं उनका अपने ही देश में रहना दूभर कर दिया।

तसलीमा नसरीन कोई व्यावसायिक लेखिका नहीं हैं, अपितु पिताजी ने बड़े ही शौक से उन्हें आयुर्विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कराई एवम् तसलीमा से डॉ. तसलीमा नसरीन एम.बी.बी.एस. बनाया। वह भी उस देश में जहाँ धर्म एवं समाज एक औरत को उपभोग की विषय वस्तु, पैर की जूती, बोलोत्पादिका मशीन, बेवकूफ एवम् दोयम दर्जे का प्राणी समझता है।

यह बंगाली संस्कृति का ही प्रभाव रहा होगा कि पिताजी घोर मुस्लिम परिवार में पैदा होकर भी कठमुल्लापन से दूर रहे एवम् परिवार तथा बच्चों को आधुनिक ज्ञान विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कराई तथा बच्चों को रूढ़िवादी विचारों से दूर ही रखा। इसी संदर्भ में तसलीमा जी अपने बचपन का संस्मरण अपनी पुस्तक-‘औरत के हक में’ बताती हैं-

मैंने भी सहज संस्कारों के कारण एक बार अल्पवय में ही माता जी से कलाई में चूड़ियाँ, माथे पर बिंदी एवम् हाथों में मेंहदी लगाने की जिद की। माता जी ने मेरी जिद को पूरा कर दिया। शाम को पिताजी ने जब मुझे उस स्थिति में देखा तो आग बबूला हो गये और मेरी चूड़ियों को पत्थर से यह कह कर तोड़ डाला कि तुम्हें श्रृंगार की गुड़िया नहीं अपितु पुरुष बनना है! कितनी आग, कितना आक्रोश एवम् कितनी ज्वाला इन बातों में झलकती है। पिता द्वारा प्रदत्त इन्हीं संस्कारों ने डॉ. तसलीमा नसरीन एम.बी.बी.एस. को एक डॉक्टर से पानी में आग लगाने वाली एक सपाट, स्पष्ट एवं प्रहारक लेखिका बना दिया।

तसलीमा नसरीन ने भी एक बार लिखना क्या प्रारंभ किया फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपनी सपाट लेखनी के

द्वारा ही आज तसलीमा विश्व की अग्रणी लेखिकाओं में गिनी जाती हैं। वे जब लिखती हैं तो उनकी लेखनी से चिंगारी निकलती है। विरोध और विद्रोह का स्वर गूँजता है। किंतु यह विरोध एवं विद्रोह किसी अच्छाई के प्रति नहीं, अपितु उन तमाम रूढ़ियों, कुरीतियों, अज्ञान, अशिक्षा एवं अवैज्ञानिक सोच के प्रति है जो कि एक मज़हब विशेष में बड़े ही व्यापक स्तर पर फैला हुआ है। उनके शब्द अंतर्मन को छूते हैं। आत्मा को झकझोरते हैं तथा मस्तिष्क के बंद दरवाजों को खोलकर उनमें नया चिंतन भरते हैं। एक वाक्य में कहें तो उनका चिंतन विश्व सौहार्द, मानवीय मूल्य, जीवन के प्रत्येक आयाम में वैज्ञानिक सोच एवम् औरत जाति जो कि विश्व आबादी का करीब आधा हिस्सा है को गरिमापूर्ण जीवन जीने की ओर प्रेरित करता है।

तसलीमा जी ने अपना संपूर्ण जीवन साहित्य साधना को ही समर्पित किया हुआ है और आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर साहित्य साधना में ही लगी रहती हैं। वे अपनी अभिव्यक्ति को यदा-कदा सुंदर चित्रों द्वारा भी अभिव्यक्त करती हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने लेखनी से ही विवाह किया है। जिसके संयोग से उन्होंने 'लज्जा', द्विखण्डितों, औरत के हक में एवम् ढेर सारी प्रेरणादायक तथा विद्रोही कविताओं को जन्म दिया। लेकिन इनको विश्व प्रसिद्धि दिलाने में इनके द्वारा प्रणीत जो ग्रंथ हैं वह है 'लज्जा' जिसमें इन्होंने 1992 में बाबरी विध्वंस के समय बांग्लादेश में हिंदुओं के साथ खेली गई खून की होली का सशक्त एवं मार्मिक चित्रण किया है। लज्जा है हिन्दू युवतियों के साथ किये गये सामूहिक व्यभिचार का चिट्ठा। लज्जा है बांग्लादेश में 1992 के दौरान तोड़े गये हजारों मंदिरों का चिट्ठा। लज्जा है हजारों हिंदुओं को नेस्तनाबूद करने का चिट्ठा एवम् उसी समय भारी मात्रा में हुए धर्मान्तरण का कच्चा चिट्ठा। लेखिका ने ऐसा सशक्त एवम् मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है कि पाठक आँसुओं को रोक पाने में असमर्थ हो

जाता है तथा रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

यही है उनका प्रथम अपराध जो उन्होंने इस्लामिक देश में रहकर इस्लाम की तलवार नीति का विरोध किया। लज्जा पर बांग्लादेश की तो बात ही क्या पूरे भारत में प्रतिबंध लगा दिया गया। उनके घर पर आक्रमण किये गये। सरकलम की धमकी दी गयी। इससे विद्रोही आत्मा चुप होने की बजाए और भी अधिक विद्रोही हो गयी और 'औरत के हक में' पुस्तक लिखकर पुरुष के ऊपर ऐसा चाँटा लगाया कि कठमुल्लापन तिलमिलाकर रह गया।

'औरत के हक में' यह उनकी एक ऐसी कृति है जो प्रत्येक नर-नारी के लिए पठनीय हैं। आदमी के लिए इसलिये ताकि आदमी का अज्ञान दूर हो एवम् औरत के लिए इसलिए ताकि औरत का स्वाभिमान जागे।

क्या औरत केवल एक साज-शृंगार की वस्तु है? क्या वह केवल एक खिलौना मात्र है? क्या उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है? क्या उसके अन्दर बुद्धि नहीं? सब कुछ है। लेकिन पुरुष समाज ने उससे सब कुछ छीन लिया और उसे घर-घर भटकने के लिए मजबूर कर दिया। तीन बार तलाक कहने पर ही उसका सबकुछ उजड़ जाता है और हाथ में आता है मात्र पछतावा, आक्रोश एवं भग्न अस्मिता। ऐसा इसलिए क्योंकि वह संपत्ति की मालिक नहीं। तसलीमा औरत के स्वाभिमान को झकझोरती है-औरतो! उठो, जागो, पुरुष बनो। कब तक आदमी द्वारा उपहार में दिये नग एवम् सोने की चैन को ही तुम अपना सबकुछ मानती रहोगी। वस्तुतः तसलीमा नसरीन वह पुरुषत्व धारिणी एवम् स्वाभिमानि महिला है जो कठमुल्लाओं को बार-बार चुनौती प्रदान करती हैं। वह प्रतीक है नई सोच की, नई उमंग की एवम् उदात्त विचारों की। उनकी यही बात कठमुल्लाओं को कचोटती है और फतवा जारी करने को मजबूर करती है।

## भारत को चर्च क्या पहुँचा रहे हैं ?

—मेजर जनरल विश्वास सदाशिव जोगलेकर

महात्मा गाँधी के विचार

1. “ईसाई धर्म से हमारी राष्ट्रीयता का हरण हो रहा है, यह कहना गलत न होगा।” उन्होंने यह भी कहा है कि यदि मेरे पास सत्ता होती और मैं कानून बना सकता तो मैं सभी धर्म परिवर्तन करने वालों को निश्चित रूप से रोक देता। वे यह भी चाहते थे कि सभी धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति फिर अपने पैतृक (बपौती) धर्म को अपना लें। उन्होंने इसे ‘घर वापसी’ का नाम दिया था।

2. धर्म परिवर्तन को जारी रखने से धर्म बदले हुए व्यक्तियों को लाभ नहीं पहुँचा है। इससे तो पादरियों ने कर्मचारी शासन पद्धति (नौकरशाही) का रूप ले लिया है। धर्म परिवर्तन समाज में तनाव का स्थायी स्रोत रहा है। गाँधी जी ने कहा है कि मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में स्वराज के अधीन स्वदेशी धर्मप्रचार करने वालों को नई शिक्षा (नव दीक्षा) देने की आजादी होगी, पर मैं कहूँगा कि यह गलत रूप में होगी। यही नहीं, उन्होंने सभी ईसाई धर्म प्रचार करने वालों को सलाह दी कि वे धर्म परिवर्तन करना पूर्ण रूप से रोक दें क्योंकि यह सत्य के स्रोत को कमजोर करने वाला सबसे खतरनाक/घातक विष है।

3. गाँधी जी ने ईसाई धर्म प्रचार करने वालों से यह भी कहा था कि धर्म परिवर्तन के लिए वे उन लोगों पर कोशिश करें जो इन बातों को नापने-तौलने की स्थिति में हैं और केवल गरीब, अनपढ़ तथा असहायों को ही अपने अभियान का लक्ष्य न बनाएँ। ईसाई धर्म का प्रचार करने वाले, इन लोगों की जो सेवा कर रहे हैं उसके लिए रोक नहीं हैं पर उन्होंने सलाह दी कि इस सेवा की कीमत उनका धर्म परिवर्तन करके न वसूल करें।

4. महात्मा गाँधी द्वारा 1920 में शुरू किए गए असहयोग आन्दोलन को ईसाई धर्म प्रचार करने वालों ने नकार दिया था और अपनी पत्रिका 'हार्वेस्ट फील्ड' में उन्होंने यहाँ तक कहा था कि भारतीय ईसाई इस आन्दोलन का समर्थन नहीं करेंगे। यही नहीं "द चर्च मिशनरी रिव्यू" के पूर्वी संवाददाता ने तो जलियांवाला बाग में बड़ी संख्या में नरसंहार के लिए जनरल डायर की अत्यधिक प्रशंसा भी की थी। क्या इससे यह साबित नहीं होता कि ईसाई अपने को इस महान देश का नागरिक नहीं मानते हैं?

5. गाँधी जी ने अपनी आत्मकथा "सत्य के मेरे प्रयोग" में बहुत स्पष्ट रूप से लिखा है कि मैंने ईसाई मत को नापसंद करना शुरू कर दिया था। यह अकारण नहीं था। उन दिनों ईसाई धर्म प्रचार करने वाले राजकोट में हाई स्कूल के पास एक कोने में खड़े हो जाते थे और हिन्दुओं तथा उनके देवी-देवताओं के खिलाफ अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते थे। मुझसे यह बर्दाश्त नहीं हुआ। वास्तव में गाँधी जी ही क्या, कोई भी भारतीय यह बर्दाश्त नहीं कर सकता।

अन्य नेताओं और विचारकों के विचार

6. स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि यह सच नहीं है कि मैं किसी धर्म के खिलाफ हूँ। यह भी उतना ही झूठ है कि मैं ईसाई धर्म प्रचार करने वालों का विरोधी हूँ। लेकिन मैं पश्चिमी देशों में धन जुटाने के उनके कुछ तरीकों के खिलाफ हूँ जहाँ बच्चों की स्कूल की पुस्तकों में हिन्दू माता को अपने बच्चे गंगा नदी में घड़ियालों के आगे फेंकता दिखाया गया है।

7. भारत के बहुत ज्ञानी एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन दो विश्वयुद्धों में हुई दुर्घटनाओं एवं बुराइयों जिनमें ईसाई देश पूरी तरह शामिल थे, के अनुभव को देखते हुए पूरी तरह सन्तुष्ट थे कि ईसाई धर्म एकदम खोखला एवं निर्बल है। उन्होंने ईसाइयों के साथ पूरी गंभीरता से इस विषय पर

बातचीत भी की।

8. जवाहरलाल नेहरू को इस बात से अत्यधिक दुःख पहुँचा था जब दिसम्बर 1931 में गोलमेज सम्मेलन से लौटते समय बापू (महात्मा गाँधी) पोप से भेंट करना चाहते थे, तब पोप ने उनसे मिलने से मना करके उनका अपमान किया था। अब दुष्ट अन्यायी ईसाइयों से सहानुभूति रखने वाले भारतीय, धर्मनिरपेक्षता तथा अल्पसंख्यक वर्ग आदि के जुनून में इन सब कुकर्मों को भुला रहे हैं।

9. दलितों के नेता जगजीवन राम ने चेतावनी दी थी कि यदि धर्म परिवर्तन को नहीं रोका गया तो निकट भविष्य में धर्म परिवर्तन करने वाले (धर्मान्तरित) व्यक्ति एक अलग (पृथक्) प्रभुतासम्पन्न ईसाई राज्य की माँग करेंगे।

10. लार्ड मैकाले ने अपने पिता को लिखे एक पत्र में उल्लेख किया था कि भारत में हमारे अंग्रेजी स्कूल आश्चर्यजनक रूप से फल-फूल रहे हैं। हिन्दुओं पर इस शिक्षा का प्रभाव अपूर्व है। ईसाई स्कूल में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कोई भी हिन्दू अपने धर्म के प्रति निष्ठावान नहीं रहता। उसने आगे कहा कि जो भी युवा ब्राह्मण हमारे ईसाई कालेजों में भूगोल पढ़ता है वह हिन्दू पौराणिक कथाओं का मजाक उड़ाता है। इस प्रकार ईसाई स्कूलों का उद्देश्य बहुत स्पष्ट हो जाता है।

11. पश्चिमी देशों की ईसाई पत्र-पत्रिकाओं ने 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों के शासन में गोवा तथा देश के अन्य भागों में भारतीयों पर हुए अत्याचारों को ही स्वीकार नहीं किया है बल्कि कहा है कि भारत में और ईसाई संसार में हिन्दुओं की चिन्ता उचित थी। फ्रांस के सबसे बड़े समाचार पत्र 'ले फिगारो' ने लिखा था कि अमरीकी विद्वान् डॉ. डेविड फ्रावले के अनुसार हिन्दुओं को मिटाने के लिए ईसाई धर्म प्रचारक करोड़ों डॉलर और प्रशिक्षित कार्यकर्ता भेज रहे हैं और हिन्दुओं को इन ईसाई धर्म प्रचारकों की आलोचना करने में हिचकिचाया नहीं चाहिए। "द डेली टेलिग्राफ" समाचार पत्र के भारतीय

संवाददाता ने कहा है-इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत में वर्तमान साम्प्रदायिक तनाव इतना भीषण नहीं होता अगर विदेशी धन प्राप्त ईसाई धर्म प्रचार करने वाले (मिशनरी) भारतीयों को केवल यह चुनाव करने को कहते कि क्या वे ईसाई धर्म अपनाना चाहते हैं और बाकी काम उन्हीं पर छोड़ देते।

12. मध्य भारत में विदेशी धर्म प्रचार करने वालों की गतिविधियों की जाँच करते समय नागपुर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री नियोगी ने 1956 में अपनी रिपोर्ट में बताया था कि भारत में रोमन कैथोलिकों और अमरीकी धन के बीच नापाक संधि सहयोग है।

13. वैरियन एलविन ने जो आदिवासियों के बीच काम करता था यह पर्दाफाश किया था कि ईसाई पादरी रुपया-पैसा उधार देने का व्यापक (विस्तृत) व्यवसाय चला रहे हैं और आदिवासियों को ईसाई बनने के लिए मजबूर (बाध्य) करने का यह एक सबसे प्रभावी उपाय है।

14. न्यायाधीश एम. बी. रेगे की अध्यक्षता में गठित ईसाई मिशन जाँच समिति ने 1656 में मध्य भारत सरकार को जो रिपोर्ट दी थी उसमें स्पष्ट बताया गया था कि छोटे बालक/बालिकाएँ जो ईसाई धर्म के गुणों को पहचानने के लायक नहीं थे उन्हें ही धर्म परिवर्तन के लिए मुख्य लक्ष्य बनाया था। साथ ही आदिवासियों को उनकी जमीन रखकर कर्ज दिये गये थे या सूखे के दौरान खाने की सामग्री जैसी सहायता दी गई थी पर यह सब इस आधार पर किया गया था कि वह व्यक्ति या तो ईसाई था अथवा ईसाई बन जाएगा। कई मामलों में तो कर्ज के बदले बच्चों को जमानत के तौर पर रख लिया गया था।

15. 'दक्षिण भारत का इतिहास' में के.ए. नीलकण्ठ शास्त्री भारत में ईसाई धर्म के प्रचार की एक कथा सुनाते हैं। पोप

से आदेश पत्र प्राप्त करने के बाद पुर्तगालियों ने सर्वत्र इस प्रकार के कुकर्म किए जैसे भारत के मूल निवासियों को लूटने और उनका जनसंहार करने का उन्हें ईश्वरप्रदत्त अधिकार हो। उनका पूरा रिकार्ड अत्याचारों की शृंखला है। उनकी पहुँच में जितने सम्पन्न मंदिर थे, उन्हें लूटने में उन्हें खास मजा आता था। रोमन कैथेलिक धर्म प्रचारक केवल पर्लफिशरी तट पर ही बड़ी संख्या में लोगों का अपने धर्म में बलात् धर्म परिवर्तन नहीं कर रहे थे बल्कि तट पर रहने वाले मछुआरों को भी फुसला रहे थे कि वे अब अपनी निष्ठा पुर्तगाल के राजा के प्रति कर दें। सेंट फ्रांसिस के अनुयायी और जेस्यूट तटीय शहरों में मंदिरों को ध्वस्त कर रहे थे और गिरजाघर बना रहे थे जैसा कि गोवा में देखा जा सकता है। “द एम्पायर ऑफ सोल, सम जर्नीज इन इंडिया” पुस्तक में पॉल विलियम्सन रॉबर्ट ने और भी घोर विवरण दिया है। बच्चों को माता पिता के सामने ही कोड़े मारे जाते थे और उनके अंग-भंग किए जाते थे। उनके माता-पिता की पलकें भी काट दी जाती थीं ताकि ये देखते समय पलकें बन्द न कर सकें। चरमपंथियों के ध्यान से अंग काटे जाते थे ताकि जब तक एक व्यक्ति के सिर और धड़ ही न रह जाए तब तक भी उसे होश रहे। जिन धर्मान्तरित हिन्दुओं पर शक होता था कि वे ईसाई रीति-रिवाजों का पर्याप्त कड़ाई और उत्साह से पालन नहीं कर रहे हैं, उन्हें घसीटा जाता था। जो गिरजाघर नहीं जाते थे उनके पैर काट दिए जाते थे। जो ईसाइयों की प्रार्थना नहीं गाते थे उनकी जीभ काट दी जाती थी और उन्हें जिन्दा जला भी दिया जाता था और यह सब धर्म के नाम पर होता था तथा ईसामसीह के अनुयायियों के अनुसार उनकी आत्माओं की शुद्धि के लिए होता था।

16. बेटिकन में अपनी लम्बी सेवा के बाद जब मो. सिगनेर ल्यूनी मेरीनेली 2 महीनों में ही सेवानिवृत्त होने वाला था, उसने

पत्रकारों, वकीलों और प्रशासकों के साथ कई बैठकें कीं। चूंकि उसने विवादास्पद पुस्तक "गॉन विद द विंड इन द वेटिकन" प्रकाशित की थी, वह एक मुख्य कलंक/षड्यंत्र का केन्द्र बन गया था। इस पुस्तक में वेटिकन के भीतर सत्ता के खेलों, यौन षड्यंत्र और वित्तीय गड़बड़ियों का वर्णन था। इससे कैथोलिकों को बड़ा आघात लगा था और वेटिकन का धर्माधिकारी वर्ग बड़ा नाराज हुआ था। इस पुस्तक की अत्यधिक बिक्री हुई। वेटिकन के धर्म अधिकारियों ने पुस्तक पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की लेकिन प्रकाशक ने पुनः छापने का आदेश पहले से ही दे दिया था और रोम में अधिकतर पुस्तकों की दुकानों पर इस पुस्तक की सारी प्रतियाँ बिक चुकी थीं। पुस्तक के अनुसार भारत के अनेक ईसाई पादरी, रोम के गिरजाघर में रहते समय, प्रातः 3 बजे टेलीविजन पर समलिंगी अश्लील कार्यक्रम देखते थे। एक पादरी को तो पुलिस ने कार में एक व्यक्ति (समलिंगी) के साथ अर्धनग्न अवस्था में पकड़ा भी था। एक अन्य पादरी स्विट्जरलैंड की सीमा पर नोटों से भरे एक सूटकेस के साथ पकड़ा गया था। इस पुस्तक में उन काली सामूहिक प्रार्थना सभाओं का वर्णन भी है जहाँ उनमें भाग लेने वाले व्यक्ति कमर से नीचे नंगे होते थे।

17. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर रहते हुए रिचर्ड टैम्पल ने कहा है "भाग्य ने साम्राज्य हमारे हाथ में दे दिया जिससे हम इन लाभ प्राप्त प्रदेशों में ईसाई धर्म को फैला सकें। हिन्दू धर्म धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। यह अभी भी लाखों व्यक्तियों का धर्म है लेकिन केवल अशिक्षित लाखों का। यह अब शिक्षित हिन्दुओं का धर्म नहीं रहा है।"

आई-703, सोम विहार,  
नई दिल्ली-110022

## वीरांगना दुर्गावती

### रणगंगा में अवगाहन करने वाली रानी

रानी दुर्गावती महोबा के राजा की कन्या और गढ़मण्डल राज्य के अधिपति दलपतशाह की सहधर्मिणी थी। गढ़मण्डल सोलहवीं सदी में एक छोटा-सा राज्य था लेकिन साथ ही साथ अपने अपार वैभव और सम्पत्ति के लिए दूर-दूर के राज्यों में भी महती ख्याति प्राप्त कर चुका था। थोड़े ही दिनों तक सुहाग-सुख भोगने के बाद दुर्गावती पर वैधव्य का वज्र टूट पड़ा परन्तु उसने धैर्य तथा साहस से काम लिया। अपने प्यारे पुत्र नारायण की देख-रेख का भार अपने कंधे पर लिया और बड़ी नीतिज्ञता और कुशलता से राज्य का प्रबन्ध किया। उसके खजाने की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उसने पन्द्रह साल तक निर्विघ्न राज्य किया। उस समय भारत का सम्राट् अकबर था। उसे अब तक भारत की सार्वभौम सत्ता प्राप्त नहीं हुई थी। हुमायूँ को मरे केवल कुछ ही साल बीते थे कि अकबर को अपने खोये साम्राज्य को फिर जीतने की सनक सवार हुई। राजपूत रियासतों को अपने पक्ष में लाने के लिए वह तरह-तरह की योजनाएँ बना रहा था। राजपूताने की बहुत-सी रियासतें उसके कपट जाल में पड़ चुकी थीं, उनकी स्वाधीनता का अपहरण हो चुका था। अकबर सूदूर प्रान्तों पर विजय करने के लिए सेनाएँ तैयार कर रहा था लेकिन प्रश्न यह था कि रुपया कहाँ से आये। इसके लिए गढ़मण्डल राज्य को लक्ष्य बनाया गया। उसके आदेश से सेनापति आसफ खाँ एक बहुत बड़ी सेना लेकर चल पड़ा। रानी दुर्गावती ने आश्चर्यजनक पराक्रम दिखलाकर दुश्मनों की शान मिट्टी में मिला दी। यद्यपि वह हार गयी फिर भी यह उसकी जीत

ही थी। नारायण भी अठारह साल का हो चुका था। माँ और बेटे ने जमकर युद्ध किया। रानी ने बहादुर सैनिकों से कहा— देश पर मर मिटने वाले वीरो! तैयार हो जाओ, आज तुम्हारी जन्मभूमि विपत्ति की सूचना पाकर क्रन्दन कर रही है।' रानी के 'जयनाद' से आकाश गूँज उठा। सैनिक मुगल सेना पर टूट पड़े, गाजर-मूली की तरह काटते हुए उन्होंने दो बार मुगलों को हराया। आसफ ख़ाँ ने कूटनीति से काम लिया। गढ़मण्डल के ही एक पातकी सैनिक को काफी घूस देकर उसने अपना काम बना लिया।

दुर्गावती साक्षात् रणरंगमयी भवानी दुर्गा की तरह लड़ाई के मैदान में शत्रु सेना का विनाश करने लगी। परन्तु मुट्ठीभर राजपूत अधिक देर तक विशाल मुगल-सेना के सामने न ठहर सके। रानी घायल हुई, उसकी बायाँ आँख में अचानक तीर लगा। फिर भी वह वीरांगना लड़ती रही। थोड़ी देर में सारी राजपूत-सेना में हाहाकार मच गया। वीर पुत्र नारायण दुश्मन के एक बाण से चल बसा। रानी पुत्र वियोग में भी कर्त्तव्य पथ से विचलित न हुई। उसने लड़ाई जारी रखी। पुत्र का शव उसकी आँखों के सामने से दूर हटा लिया गया। परन्तु सहनशक्ति की भी सीमा होती है, रानी बुरी तरह घायल हो गयी। आँखों तले अँधेरा छा गया। जब विजय की आशा नहीं रही तब देखते ही देखते उस वीरांगना ने कमर से कटार निकाल कर अपनी छाती में भोंक ली। रानी रणगंगा में अवगाहन करके पवित्र हो गयी। गढ़मण्डल पर अकबर का आधिपत्य हो गया। दिल्ली का खजाना रत्नों, मोतियों और हीरों से भर गया लेकिन दुर्गावती रूपी रत्न पर यवनों का अधिकार न हो सका।

## कोर्ट ने पूछा समान नागरिक संहिता

### क्यों नहीं?

25 वर्षों में यह पाँचवीं बार है जब सर्वोच्च न्यायालय ने विविध समुदायों के लिए अलग-अलग कानून को गलत बताया। राष्ट्रीय महिला आयोग की एक याचिका पर सुनवाई करते हुए न्यायालय ने कहा कि हिन्दुओं पर लागू नागरिक कानून में हुए हस्तक्षेप के प्रति हिन्दू समुदाय सहनशील रहा लेकिन दूसरे समुदायों के साथ ऐसा नहीं हुआ।

इससे पहले जुलाई 2003 में न्यायालय ने समान नागरिक संहिता बनाने को कहा था। उससे भी पहले जोरेन दियेनो बनाम एस.एस. चोपड़ा (1985), मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो बेगम (1985) तथा सरला मुद्गल बनाम केन्द्र सरकार (1990) मामलों में अदालत यह कह चुकी है। शाहबानो मामले में तो मुख्य न्यायाधीशों ने फैसले में लिखा, 'धार्मिक स्वतन्त्रता हमारी संस्कृति की नींव हैं इसलिए उत्पीड़ितों की रक्षा और राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए समान नागरिक संहिता आवश्यक है।'

सरला मुद्गल मामले में कोर्ट ने रेखांकित किया कि विवाह, सम्पत्ति, उत्तराधिकार जैसे मामले धार्मिक विषय नहीं हैं। भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ का जन्म मजहब से नहीं बल्कि लॉर्ड वारेन हेस्टिंग्स के बनाए कानून से हुआ था। 1791 में वह कानून आया जिसके अनुसार शादी, तलाक तथा सम्पत्ति विरासत मामलों में मुसलमान और हिन्दू अपने-अपने धार्मिक चलन से चल सकते थे।

लेकिन उसी ब्रिटिश सरकार ने 1832 में आपराधिक मामलों में मुस्लिम लॉ को खत्म कर समान नागरिक कानून लागू कर दिया। इसीलिए यहाँ मुस्लिम चोरों के हाथ नहीं काटे

जाते बल्कि अन्य चोरों की तरह उन्हें भी जेल ही मिलती है। कहने का भाव है कि शरीयत स्थायी नहीं है इसे बदला जा सकता है।

सरला मुद्गल मामले में सुप्रीम कोर्ट ने सीधा आदेश दिया था कि केन्द्र सरकार अगस्त 1996 तक शपथ-पत्र (हलफनामा) देकर अदालत को बताए कि सभी नागरिकों के लिए एक समान संहिता बनाने के लिए उसने क्या कदम उठाए? कोर्ट अभी भी उत्तर की प्रतीक्षा में हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी समान नागरिक कानून बनाने के लिए भारत की छीछालेदर की थी। जनवरी, 2000 में वहाँ महिलाओं के प्रति भेदभाव के विरुद्ध हुए सम्मेलन में कहा गया कि भारत को सभी नागरिकों के लिए एक समान कानून बनाना चाहिए।

केवल अदालत और विश्व मंच ही नहीं बल्कि देश की जनता भी समान कानून चाहती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 84 प्रतिशत लोग समान नागरिक संहिता के पक्ष में हैं। इनमें बड़ी संख्या में मुस्लिम महिलाएँ और पुरुष भी सम्मिलित हैं।

धार्मिक अल्पसंख्यक भारत में ही नहीं अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, अरब देशों और चीन में भी हैं लेकिन कहीं भी अलग मजहबी कानून नहीं है। परन्तु अपने यहाँ मुस्लिमों व हिन्दुओं को अलग करने वाले कानून हैं जो देश के लिए हितकर नहीं हैं।

केशव संवाद, मेरठ

21 जुलाई 2011

## पहले मन को निर्मल करो

-आनन्द स्वामी

एक महात्मा थे। किसी घर में भिक्षा माँगने गए। घर की देवी ने भिक्षा दी और हाथ जोड़कर बोली- “महात्मा जी! कोई उपदेश दीजिए।”

महात्मा बोले-“आज नहीं, कल उपदेश दूँगा।”

देवी ने कहा- “तो कल भी यहीं से भिक्षा लीजिए।”

दूसरे दिन महात्मा भिक्षा लेने चले तो कमंडल में कुछ गोबर भर लिया, कुछ कूड़ा, कुछ कंकड़। कमंडल लेकर देवी के घर पहुँचे। देवी ने उस दिन बड़ी स्वादिष्ट खीर बनाई थी उनके लिए। उसमें बादाम और पिस्ते डाले थे। महात्मा ने आवाज लगाई। ‘ओ३म् तत् सत्!’

देवी खीर का कटोरा लेकर बाहर आई। महात्मा ने अपना कमंडल आगे कर दिया। देवी उसमें खीर डालने लगी तो देखा “वहाँ गोबर और कूड़ा-कंकड़ भरे हैं। उसने कहा- “महाराज! यह कमंडल तो गंदा है।

महात्मा बोले- “हाँ, गंदा तो है। इसमें गोबर है, कूड़ा है, कंकड़ है परंतु अब करना क्या है। खीर भी इसमें डाल दो।”

देवी ने कहा- “नहीं महाराज! इसमें डालने से तो खीर खराब हो जाएगी। मुझे दीजिए यह कमंडल, मैं इसे शुद्ध कर देती हूँ।”

महात्मा बोले- “अच्छा देवी, तब डालोगी खीर जब कूड़ा-कंकड़ निकल जाएगा।”?

देवी ने कहा - “हाँ”

महात्मा बोले - “यही मेरा उपदेश है। मन में जब तक चिंताओं का कूड़ा-कंकड़ और बुरे संस्कारों का गोबर भरा है तब तक उपदेश के अमृत का कोई लाभ नहीं होगा। उपदेश का अमृत प्राप्त करना है तो पहले मन को निर्मल करना चाहिए, चिंताओं को निकाल फेंकना चाहिए, बुरे संस्कारों को समाप्त कर देना चाहिए। तभी ईश्वर का नाम वहाँ चमक सकता है, तभी सुख और आनंद की ज्योति जगमगा सकती है। कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।

पाछे-पाछे हरि फिरैं, कहत कबीर-कबीर॥

## मनुस्मृति पर आक्षेप

-डॉ. भवानीलाल भारतीय

आर्यसमाज की विचारधारा का आधार वेद हैं और वेदों के सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता और व्याख्याता मनु हैं जिन्होंने पुरातन काल में आर्यों के धर्म, कर्तव्य-कर्म, वैयक्तिक तथा सामाजिक विधि-विधानों को मनुस्मृति के रूप में संकलित किया। ऋषि दयानन्द ने वेदों के पश्चात् मनु के वचनों को सर्वाधिक प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। आर्यसमाज के अनेक विद्वानों ने मनुस्मृति पर अपने भाष्य एवं व्याख्या ग्रन्थ लिख कर इस शास्त्र को सर्वजन-सुलभ बनाया। इसमें पं. भीमसेन शर्मा, पं. आर्य मुनि, पं. तुलसीराम स्वामी आदि प्राचीनों के अतिरिक्त वर्तमान में डॉ. सुरेन्द्रकुमार ने इस स्मृति पर पर्याप्त श्रम कर उसकी विस्तृत सतर्क व्याख्या लिखी है जो विद्वत्-समुदाय द्वारा प्रशंसित हुई है।

खेद है कि कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने मनु शास्त्र के तत्त्वार्थ को न समझ कर उसके विरोध में आवाज उठाई। ये लोग वे हैं जिन्होंने न तो इस ग्रन्थ को देखा है और न इसके प्रतिपाद्य को जाना है। अभी दिल्ली में मुझे पता लगा कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा 88 वर्ष पूर्व मनुस्मृति की प्रति को जलाने के कुत्सित प्रयास की घटना का 75वाँ स्मृति दिवस देश की राजधानी में मनाया गया। हतभाग्य हिन्दू जाति का दुर्भाग्य है कि उसके मान्य ग्रन्थों को अपमानित और लांछित करने के नीचतापूर्ण प्रयास वे ही लोग करते हैं जो स्वयं को हिन्दू कहते हैं।

खेद तो इस बात का है कि आर्यसमाज से सम्बद्ध, स्वयं को बुद्धिवादी कहने का दम्भ करने वाले लोगों द्वारा ही रामायण-महाभारत-मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रन्थों पर आक्षेप किये जाते हैं। स्वाध्याय तथा शास्त्र-ज्ञान से शून्य ऐसे लोगों से अन्य अपेक्षा भी क्या की जा सकती है। राजधर्म के जनवरी 2003 के अंक में हम पढ़ते हैं- "हिन्दू धर्म के ठेकेदार

मनुस्मृति की 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' कहते थकते नहीं तो फिर धर्मग्रन्थों में चुन-चुन कर नारी का अपमान, तिरस्कार क्यों होता रहा?" नारी पर किए जाने वाले अपमान और तिरस्कार के लिए मनु को क्यों उत्तरदायी ठहराया जाता है? धर्मशास्त्रों को भी इसके लिए उत्तरदायी क्यों बताया जाये?

आगे लेखक ने वाल्मीकीय रामायण पर सीता को लेकर कटाक्ष किया और राम को सीता को वनवास देने के लिए उत्तरदायी ठहराया। उसके अनुसार राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये और सीता धरती में समा गई। स्वयं को आर्यसमाजी कहने वाला लेखक वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड की हकीकत से अपरिचित है। वस्तुतः रामायण की समाप्ति युद्धकाण्ड पर ही हो गई थी। सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, अतः सीता के वनवास और उसके धरती में समा जाने के प्रसंग कपोलकल्पित हैं। जर्मनी के रामायण-मर्मज्ञ विद्वान् हरमन याकोबी ने भी यही विचार रखा है।

लेखक ने महाभारत के आर्ष व्याख्यानों को न पढ़कर द्रौपदी के पाँच पति होने की कथा को मान्य कर लिया जबकि आर्यसमाज के मूर्धन्य विद्वान् अमर स्वामी ने इस प्रसंग की पूर्वापर मीमांसा करने के पश्चात् सिरे से खारिज कर दिया था। अतः द्रौपदी-परिणय प्रसंग की सच्चाई से अनभिज्ञ इस लेखक ने महाभारत पर आक्षेप करने में संकोच नहीं किया। यहाँ एक विचारणीय बात तो यह है कि किसी युग-विशेष की सामाजिक स्थिति में उतार-चढ़ाव आते हैं, नारियों की दशा में कभी स्पृहणीय तो कभी गर्हणीय परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं किन्तु इसके लिए किसी धर्मग्रन्थ या इतिहास ग्रन्थ को दोष नहीं दिया जा सकता। नारी की दुर्दशा के लिए मनु, वाल्मीकि और व्यास को उत्तरदायी क्यों ठहराया जाये?

क्या मनु ओसामा से भी निकृष्ट है?

जयपुर से प्रकाशित आर्य-नीति के 8 फरवरी 2003 के अंक में डॉ. धर्मकीर्ति लिखित एक पुस्तक 'मनु बनाम लादेन' की

चर्चा छपी है। 230 पृष्ठों की यह पुस्तक परममित्र प्रकाशन दिलशाद गार्डन, दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में मनु को ओसामा बिन लादेन से ज्यादा घातक तथा खतरनाक बताया गया है। ग्रन्थकार ने आतंकवाद को आर्यों का पुराना हथियार बताया है। पुस्तक में मनु को लादेन की तुलना में अधिक क्रूर, पाशविक, जघन्य अपराधी जैसे निन्दास्पद शब्दों से पुकारा गया है। मनु के लिए इस प्रकार के अपमानपूर्ण शब्दों का प्रयोग करने वाले लेखक और उसकी दूषित कृति को सहिष्णु हिन्दुओं के देश में ही सहन किया जा सकता है। यदि किसी अन्य धर्म या संस्कृति के विधायक, लाखों-करोड़ों के मान्य ग्रन्थ का इस प्रकार अपमान किया जाता तो लेखक के लिए मुसीबत खड़ी हो जाती। मनुस्मृति न तो अकेले आर्यों की है और न सनातनियों की। मनु को पैशाचिक विधानों का निर्माता कह कर मानवमात्र के लिए सार्वभौम विधि व्यवस्था बताने वाले उस महान् स्मृतिकार का अपमान वही जाति सहन कर सकती है जो सर्वथा निर्वीर्य, अशक्त तथा स्वाभिमान-शून्य हो गई हो।

ऐसे शंकराचार्यों के रहते क्या गोबध बंद होगा?

हैदराबाद से प्रकाशित दक्कन क्रानिकल में छपे काज्वी के शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती के एक साक्षात्कार को दक्षिण-समाचार (12 फरवरी 2003) ने पृष्ठ चार पर उद्धृत किया है। इस इण्टरव्यू में उनसे अयोध्या में राममंदिर निर्माण, धर्मपरिवर्तन-विषयक कानून तथा गोबध निषेध जैसे प्रश्नों पर चर्चा हुई। प्रश्नकर्ता ने शंकराचार्य से पूछा-गोरक्षा कितनी महत्त्वपूर्ण है जबकि ऋग्वेद में तो गोमेध या गो बलिदान को मान्यता प्राप्त है? उत्तर में शंकराचार्य ने कहा- “यह सच है कि वैदिक समय में लोग गोमांस खाते थे लेकिन वे अलग तरह के लोग थे। वे बलशाली थे, अनुशासित थे, महीनों तक उपवास रखते थे।” शंकराचार्य के इस मिथ्या कथन पर कोई टिप्पणी करना अनावश्यक है। हम तो शंकराचार्य को अपने आदर्श गुरु तथा पूज्य मानने वाले उन करोड़ों सनातनमतावलम्बियों से पूछना

चाहते हैं कि क्या ऐसे शंकराचार्य सनातन हिन्दू धर्म के प्रवक्ता या आदर्श हो सकते हैं? वेदों में गोमांस भक्षण को मान्य बताने वाले शंकराचार्य को चाहिए कि वह वेदों के स्वामी दयानन्द कृत भाष्य को पढ़ें तथा मंत्रों में प्रयुक्त इन शब्दों के यथार्थ अर्थ को जानने की चेष्टा करें जिनके वास्तविक अभिप्राय को न जान कर वेदों पर गोमांस-भक्षण को उचित ठहराने का आरोप लगाया जाता है। वेदों पर पशुहिंसा तथा याज्ञिक विधानों में अश्व, गो, अवि, अज आदि पशुओं के मांस का प्रयोग करने के उल्लेखों का निराकरण करने में आर्यसमाज के प्रवर्तक तथा उसके अनुयायी ही सफल हुए हैं। जयेन्द्र सरस्वती का यह बयान सनातन धर्म के लिए कलंक रूप है।

**आर्य विद्वान् पौराणिक-मत के प्रवक्ता बने**

काबे में कुफ़ की कहावत तभी चरितार्थ होती है जब विशुद्ध, वेदाधारित वैदिक धर्म के प्रवक्ता विद्वान् आगे होकर पौराणिक सिद्धान्तों की पुष्टि में कुतर्क और अपयुक्तियाँ प्रस्तुत करने लगते हैं। आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में पौराणिक लोग अपने मृत पितरों के लिए पिण्डदान करते हैं तथा मरे पूर्वजों की तृप्ति के लिए ब्राह्मणों को खीर, हलुवे आदि का भोजन इस विश्वास के साथ कराते हैं कि यह भोजन उनके परलोकगत पितरों को अवश्य मिलेगा।

यह विश्वास पौराणिक मतावलम्बियों का है और इस मत की पुष्टि में सनातनधर्मी विद्वानों ने हजारों पृष्ठ लिखे हैं। मुझे हैरानी और आश्चर्य तब हुआ जब मैंने “शान्तिधर्मी” के अक्टूबर 2002 के अंक में एक आर्य संन्यासी का लेख आश्विन में पितरों को पिण्ड देने तथा पितृ विसर्जन के समर्थन में छपा पढ़ा। आश्विन मास में जीवित या मृत पितरों की खीर, हलुवा आदि खिलाने का स्वामी दयानन्द ने कहीं प्रतिपादन नहीं किया। उन्होंने संस्कार विधि और नित्य कर्म विधि में जिस पितृ यज्ञ का विधान किया है उसमें कहीं भी आश्विन मास नहीं आता। स्वामी जी का मन्तव्य तो यह है

कि जीवित पितरों की सेवा तथा उन्हें भोज्य पदार्थ खिलाना आर्यों का नित्य का कर्त्तव्य है, केवल किसी मास के एक पखवाड़े के लिए नहीं। तब पितृपक्ष का समर्थन क्यों? सच तो यह है कि आज अनेक आर्य विद्वान् पौराणिक ग्रन्थों की कथा-कहानियों तथा उपाख्यानों को रूपकात्मक बता कर उनके समर्थन में लिखने-बोलने लगे हैं। कुछ समय पूर्व जब मैंने इसके विरोध में आवाज़ उठाई तो कतिपय महानुभावों ने कहा कि ऐसी व्याख्याएँ तो स्वयं ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में की हैं। मेरा उत्तर था कि स्वामी जी ने ब्राह्मण ग्रन्थों में आये रूपकों की व्याख्या की है न कि पौराणिक संदर्भों की। मेरा पुनः निवेदन है कि यदि आर्य विद्वान् स्वकल्पित व्याख्याओं द्वारा आश्विन मास के पितृ पक्ष का समर्थन करने से तो मृतक श्राद्ध के खण्डन में लिखे गये आर्य विद्वानों के उन ग्रन्थों को क्या हम जल में प्रवाहित कर दें और पं. कालूराम, अखिलानन्द तथा माधवाचार्य की पंक्ति में खड़े हो जायें। यदि आश्विन पक्ष का पितृपक्ष स्वामी दयानन्द को अभीष्ट होता तो क्या वे अपने ग्रन्थों में इसे विधेय नहीं बता सकते थे? क्या पितरों की सेवा केवल एक पक्ष के लिए ही कर्त्तव्य है, सदा के लिए नहीं।

आपातरमणीय युक्तियों के सहारे शिव, विष्णु, गणेश आदि पौराणिक देवों से सम्बद्ध बातों को युक्तिसिद्ध बताना कम से कम आर्य विद्वानों को तो शोभा नहीं देता। यदि हमारे कतिपय मित्र इसे औचित्यपूर्ण मानते हैं तो पहले सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास पर हड़ताल फेर दें जिसमें वाम मार्ग से लेकर ब्रह्मसमाज पर्यन्त सम्प्रदायों की अवैज्ञानिक बातों का खण्डन किया गया है। फिर चाहे वे शिवलिंग को दीपक बतायें, राधा और गोपियों को कंस के विरुद्ध गठित सेना बतायें अथवा पितरों को आश्विन के कृष्णपक्ष में पिण्डदान का समर्थन करें।

8/423, नन्दनवन, जोधपुर

## Dayananda-As A Scholar

Dayananda as a scholar was greater than the greatest of the all scholars born on the face of the globe, during the last five thousand years. He possessed all the knowledge of all the branches of the Vedas and the Vedic literature. He was a mighty good all-rounder of social, spiritual, religious, political and yogic knowledge. There was no branch in the vast Vedic literature, which he left untouched. He studied more than three thousand Sanskrit books right from Brahma studied down to Jamini i.e. from Rigveda upto Purva-Mimamsa. This statement was made by Dayananda himself in his small book 'Bhranti Nivarana'. When I read this, at once the words slipped out of my heart:

**What a volcanic personality he was!**

**What a wonderful figure he was!**

His tremendous study was not one sided. His study shines out without a shadow of doubt, as comparative and critical, logical and scientific. As a thinker, he classified the truth in three parts: (i) The partial truth (ii) The half truth and (iii) The whole truth.

He neither accepted the partial truth nor the the half truth. He always accepted the whole truth which he found in the glorious Vedas. He loudly lamented the luck of Shankara, Ramanuja and Vallabha, as they had no insight in the four Vedas. They mistook Upanishads as the Vedas. In the literature compiled by them, they have given Upanishadic quotations in place of Vedic quotations, where ever it was necessary for them to do. This proves that these scholars were unconscious of the Vedas. Their knowledge was limited up to the Gita, Upanishads and Vedanta-Darshana.

It was only Dayananda who perceived this blunder committed by the above scholars and defied them. Dayananda strongly and ruthlessly criticized the dogma of 'pure monoism' or 'Adwaita-vada' preached by Shankaracharya

and proved very well indeed the futility of it. Dayananda truthfully criticized almost all 'isms' that were against the Vedas, because he, after many years of deep-concentration for hours together daily, come to the rational conclusion that the Vedas are not at all the creation of any human mind: Vedas are not at all the reflection of any human brain; but they are revelation by Almighty God-The Supreme Self. And so, Dayananda proclaimed from the house-top that no sectarian scripture can claim itself to be the revelation except the Vedas. The Vedas can alone enjoy that supreme position.

Now, here arises a question as to why the Vedas are revelation and no other sectarian scripture of the world?

Here, too, Dayananda's view is quite clear and logical. Dayananda says: The Vedas are an encyclopedia of all knowledge. The root principles of all the sciences or of all the branches of knowledge are embedded in the Vedas alone. There are different kinds of learnings just as science of mathematics, science of astronomy, science of cosmology, science of geology, science of medicine, science of anatomy, science of music, science of zoology, science of botany etc.

Can you show the above learnings in the Ramayana, Mahabharata or Bhagawata? Can you show the above learnings in the Puranas, Quran or Bible? The answer remains simply in negative.

This is the reason why Dayananda, with all the emphasis at his command, declared the Vedas as the only revelation and no other scripture of the world. The fact that all the learnings are found in the Vedas, is also proved by many unprejudiced modern scholars and scientists. India-'the land of the Vedas' is therefore recognized as 'the cradle of religion and science'. When, once, it is proved that the Vedas are revelation then, it is also automatically proved that the Vedic religion is the universal religion.

And, when Vedic religion is the universal religion, then anything and everything against the Vedas, is wrong.

This was the grip of Dayananda.

This was the hold of Dayananda.

This was the tone of Dayananda.

He, further, asserts:

Any man, from any part of the world and however great he may be, is apt to be imperfect because the very nature of the human soul is knowledge-limited. And, therefore, sanction from the Vedas becomes indispensable. No statement can ever be true without the holy sanction for the Vedas. Man is always imperfect and fallible and Vedas are always perfect and infallible as they are the Knowledge-Divine.

Hence, not only India but the whole is indebted to Dayananda as he was the only eye-opener of the whole world.

And that is why the great Sri Aurobindo, giving tribute to Dayananda in his masterly fashion writes:

"Very different was the manner of working of Dayananda. Here was one who did not infuse himself informally into the indeterminate soul of things, but stamped his figure indelibly as in bronze on men and things. Here was one whose formal works are the very children of his spiritual body, children fair and robust and full of vitality and clearly the work he was sent to do, choose his materials, determined his conditions with a sovereign clairvoyance of the spirit and executed his conception with the puissant mastery of the born worker. As I regard the figure of this formidable artisan in God's workshop, images crowd on me which are all of battle and work and conquest and triumphant labour. Here, I say to myself, was a very soldier of Light, a warrior in God's world, a sculptor of men and institutions, a bold and rugged victor of the difficulties which matter presents to spirit. And the whole sums itself up to me in a powerful impression of spiritual practicality. The combination of these two words, usually so divorced from each other in our conceptions, seems to me the very definition of Dayananda." (Bankim-Tilak-Dayananda', p.42)

And this is the reason why the author of this booklet calls Dayananda greater than the greatest of all scholars born on the face of the globe subsequent to Mahabharata Period.

उपहृता इहगाव उपहृता अजावयः। अथोऽन्नस्य कीलाल  
उपहृतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवं शुग्मं  
शंयोः शंयोः (यजु. 3/43)

ऋषि-शंयुबार्हस्पत्यः, देवता-वास्तुपतिः, भुरिग जगती  
अर्थ-हे पश्वादिपते प्रभो! आपकी कृपा से हमें उत्तम गाएँ, घोड़े,  
हाथी आदि सब पशु और अन्न, औषधियाँ घरों में प्राप्त हों ताकि  
किसी पदार्थ के अभाव में हमें कष्ट न हो। हे विद्वानो! आपके  
संग प्रभु कृपा से क्षेमकुशलता और शान्ति तथा मोक्षसुख और  
सांसारिक सुख प्राप्त हो, ऐसी आपसे हम कामना करते हैं। आप  
स्वभाव से भक्तों की कामना पूर्ण करते हैं।



Oh Almighty God, by Your grace may there be cows, horses, goats  
etc. and also health giving virtuls in our house holds. In this world  
for our welfare and peace may we attain worldly happiness by sub-  
duing bodily ailments and final bliss by eliminating all causes of  
fear.